• कविताएं..

हिचकियों ने कल सताया देर तक ...

जुल्म मुझ पर उसने ढाया देर तक
हिचकियों ने कल सताया देर तक
बाग़ में ताज़ा कली को देख कर
एक भंवरा गुनगुनाया देर तक
कल अमावस हो गयी पूनम हुज़ूर
चांद छत पर मुस्कुराया देर तक
मोर ने अंगड़ाइयां जब खुल के लीं
मेघ ने मल्हार गाया देर तक
कल तेरी तस्वीर से बातें हुईं
हालेदिल मैंने सुनाया देर तक
ख्वाब में कल भी वो आये देर से
सब्र मेरा आज़माया देर तक
याद रखने की हिदायत दे गया
लौट कर जो ख़ुद न आया देर तक

-नकुल गौतम

घास...

तब हम डिब्बों और कनस्तरों के बीच रह रहे थे
जब हम बज रहे थे। यूं ही।
अब शोर नहीं है।
और हम दफ़न भी नहीं हैं धरती में।
हम वज़नी चीज़ों की तरह रह रहे हैं।
वज़न लिये छाती पर।
न जाने स्मृतियों का, चिन्ताओं का, या उम्मीदों का।
नीचे घास है पीली पड़ती हुई ।
वज़न को रोकती हुई अपने ऊपर, हरापन तजकर।
बीज बचे हैं।
वे बजते नहीं हैं। कहीं कोई शोर नहीं है।

-शशि प्रकाश

• कहानी/—मोहन राकेश

मलबे का मालिक...

साढ़े सात साल के बाद वे लोग लाहौर से अमृतसर आये थे। हॉकी का मैच देखने का तो बहाना ही था, उन्हें ज्यादा चाव उन घरों और बाजारों को फिर से देखने का था जो साढ़े सात साल पहले उनके लिए पराये हो गये थे। हर सडक़ पर मुसलमानों की कोई-न-कोई टोली घूमती नजर आ जाती थी। उनकी आंखें इस आग्रह के साथ वहां की हर चीज को देख रही थीं जैसे वह शहर साधारण शहर न होकर एक अच्छा-खासा आकर्षण-केन्द्र हो।

तंग बाजारों में से गुजरते हुए वे एक-दूसरे को पुरानी चीजों की याद दिला रहे थे...देख-फतहदीना, मिसरी बाजार में अब मिसरी की दुकानें पहले से कितनी कम रह गयी हैं। उस नुक्कड़ पर सुक्खी भठियारिन की भट्ठी थी, जहां अब वह पानवाला बैठा है।...यह नमक मंडी देख लो, खान साहब! यहां की एक-एक लालाइन वह नमकीन होती है कि बस...!

बहुत दिनों के बाद बाजारों में तुर्रेदार पगड़ियां और लाल तुरकी टोपियां नजर आ रही थीं। लाहौर से आये मुसलमानों में काफी संख्या ऐसे लोगों की थी जिन्हें विभाजन के समय मजबूर होकर अमृतसर से जाना पड़ा था। साढ़े सात साल में आये अनिवार्य परिवर्तनों को देखकर कहीं उनकी आंखों में हैरानी भर जाती और कहीं अफसोस घिर आता-वल्लाह! कटरा जयमल सिंह इतना चौड़ा कैसे हो गया? क्या इस तरफ के सब-के-सब मकान जल गये थे?...यहां हकीम आसिफअली की दुकान थी न? अब यहां एक मोची ने कब्जा कर रखा है?

और कहीं-कहीं ऐसे भी वाक्य सुनाई दे जाते-वली, यह मस्जिद ज्यों की त्यों खड़ी है? इन लोगों ने इसका गुरुद्वारा नहीं बना दिया!

जिस रास्ते से भी पाकिस्तानियों की टोली गुजरती, शहर के लोग उत्सुकतापूर्वक उस तरफ देखते रहते। कुछ लोग अब भी मुसलमानों को आते देखकर आशंकित से रास्ते से हट जाते, जबकि दूसरे आगे बढक़र उनसे बगलगीर होने लगते। ज्यादातर वे आगन्तुकों से ऐसे-ऐसे सवाल पूछते-कि आजकल लाहौर का क्या हाल है? अनारकली में अब पहले जितनी रौनक होती है या नहीं? सुना है, शाहालमीगेट का बाज़ार पूरा नया बना है? कृष्णनगर में तो कोई खास तब्दीली नहीं आयी? वहां का रिश्वतपुरा क्या वाकई रिश्वत के पैसे से बना है?...कहते हैं, पाकिस्तान में अब बुर्क़ा बिल्कुल उड़ गया है, यह ठीक है?... इन सवालों में इतनी आत्मीयता झलकती थी कि लगता था, लाहौर एक शहर नहीं, हजारों लोगों का सगा-सम्बन्धी है, जिसके हाल जानने के लिए वे उत्सुक हैं। लाहौर से आये लोग उस दिन शहर-भर के मेहमान थे जिनसे मिलकर और बातें करके लोगों को बहुत खुशी हो रही थी।

बाजार बांसां अमृतसर का एक उजड़ा-सा बाजार है, जहां विभाजन से पहले ज्यादातर निचले तबके के मुसलमान रहते थे। वहां ज्यादातर बांसों और शहतीरों की

बाजार बांसां में उस दिन भी चहल-पहल नहीं थी क्योंकि उस बाजार के रहने वाले ज्यादातर लोग तो अपने मकानों के साथ ही शहीद हो गये थे, और जो बचकर चले गये थे, उनमें से शायद किसी में भी लौटकर आने की हिम्मत नहीं रही थी।

सिर्फ़ एक दुबला-पतला बुड्ढा मुसलमान ही उस दिन उस वीरान बाजार में आया और वहां की नयी और जली हुई इमारतों को देखकर जैसे भूलभुलैयां में पड़ गया...

ही दुकानें थीं जो सब की सब एक ही आग में जल गयी थीं। बाजार बांसां की वह आग अमृतसर की सबसे भयानक आग थी जिससे कुछ देर के लिए तो सारे शहर के जल जाने का अन्देशा पैदा हो गया था। बाजार बांसां के आसपास के कई मुहल्लों को तो उस आग ने अपनी लपेट में ले ही लिया था। खैर, किसी तरह वह आग काबू में आ गयी थी, पर उसमें मुसलमानों के एक-एक घर के साथ हिन्दुओं के भी चार-चार, छः-छः घर जलकर राख हो गये थे। अब साढ़े सात साल में उनमें से कई इमारतें फिर से खड़ी हो गयी थीं, मगर जगह-जगह मलबे के ढेर अब भी मौजूद थे। नई इमारतों के बीच-बीच वे मलबे के ढेर एक अजीब वातावरण प्रस्तुत करते थे।

बाजार बांसां में उस दिन भी चहल-पहल नहीं थी क्योंकि उस बाजार के रहने वाले ज्यादातर लोग तो अपने मकानों के साथ ही शहीद हो गये थे, और जो बचकर चले गये थे, उनमें से शायद किसी में भी लौटकर आने की हिम्मत नहीं रही थी। सिर्फ़ एक दुबला-पतला बुड्ढा मुसलमान ही उस दिन उस वीरान बाजार में आया और वहां की नयी और जली हुई इमारतों को देखकर जैसे भूलभुलैयां में पड़ गया। बायीं तरफ जानेवाली गली के पास पहुंचकर उसके पैर अन्दर मुड़ने को हुए, मगर फिर वह हिचकिचाकर वहां बाहर ही खड़ा रह गया। जैसे उसे विश्वास नहीं हुआ कि यह वही गली है जिसमें वह जाना चाहता है। गली में एक तरफ कुछ बच्चे कीड़ी-कीड़ा खेल रहे थे और कुछ फासले पर दो स्त्रियां ऊंची आवाज में चीखती हुई एक-दूसरी को गालियां दे रही थीं।

सब कुछ बदल गया, मगर बोलियां नहीं बदलीं! बुड्ढे मुसलमान ने धीमे स्वर में अपने से कहा और छड़ी का सहारा लिये खड़ा रहा। उसके घुटने पाजामे से बाहर को निकल रहे थे। घुटनों से थोड़ा ऊपर शेरवानी में तीन-चार पैबन्द लगे थे। गली से एक बच्चा रोता हुआ बाहर आ रहा था। उसने उसे पुचकारा, इधर आ, बेटे! आ, तुझे चिज्जी देंगे, आ! और वह अपनी जेब में हाथ डालकर उसे देने के लिए कोई चीज ढूंढ़ने लगा। बच्चा एक क्षण के लिए चुप कर गया, लेकिन फिर उसी तरह होंठ बिसूरकर रोने लगा। एक सोलह-सत्रह साल की लडक़ी गली के अन्दर से दौड़ती हुई आयी और बच्चे को बांह से पकड़कर गली में ले चली। बच्चा रोने के साथ-साथ अब अपनी बांह छुड़ाने के लिए मचलने लगा। लड़की ने उसे अपनी बांहों में उठाकर साथ सटा लिया और उसका मुंह चूमती हुई बोली, चुप कर, खसम-खाने! रोएगा, तो वह मुसलमान तुझे पकडक़र ले जाएगा! कह रही हूं, चुप कर!

बुड्ढे मुसलमान ने बच्चे को देने के लिए जो पैसा निकाला था, वह उसने वापस जेब में रख लिया। सिर से टोपी उतारकर वहां थोड़ा खुजलाया और टोपी अपनी बगल में दबा ली। उसका गला खुश्क हो रहा था और घुटने थोड़ा कांप रहे थे। उसने गली के बाहर की एक बन्द दुकान के तख़्ते का सहारा ले लिया और टोपी फिर से सिर पर लगा ली। गली के सामने जहां पहले ऊंचे-ऊंचे शहतीर रखे रहते थे, वहां अब एक तिमंजिला मकान खड़ा था। सामने बिजली के तार पर दो मोटी-मोटी चीलें बिल्कुल जड़-सी बैठी थीं। बिजली के खम्भे के पास थोड़ी धूप थी। वह कई पल धूप में उड़ते जर्रों को देखता रहा। फिर उसके मुंह से निकला, या मालिक!

एक नवयवुक चाबियों का गुच्छा घुमाता गली की तरफ आया। बुड्ढे को वहां खड़े देखकर उसने पूछा, कहिए मियांजी, यहां किसलिए खड़े हैं?

बुड्ढे मुसलमान को छाती और बांहों में हल्की-सी कंपकंपी महसूस हुई। उसने होंठों पर जबान फेरी और नवयुवक को ध्यान से देखते हुए कहा, बेटे, तेरा नाम मनोरी है न?

नवयुवक ने चाबियों के गुच्छे को हिलाना बन्द करके अपनी मुट्ठी में ले लिया और कुछ आश्चर्य के साथ पूछा, आपको मेरा नाम कैसे मालूम है?

साढ़े सात साल पहले तू इतना-सा था, कहकर बुड्ढे ने मुस्कराने की कोशिश की।

आप आज पाकिस्तान से आये हैं?

हां! पहले हम इसी गली में रहते थे, बुड्ढे ने कहा, मेरा लडक़ा चिराग़दीन तुम लोगों का दर्जी था। तकसीम से छः महीने पहले हम लोगों ने यहां अपना नया मकान बनवाया था। -जारी

• शायरी...

बन बन के वो आईना ज़रा देख रहे हैं
आग़ाज-ए-जवानी की अदा देख रहे हैं
बन बन के क़ज़ा खेल रही है मिरे सर पर
वो आईने में अपनी अदा देख रहे हैं
आए तो हैं पीते नहीं नासेह अभी साक़ी
महफ़िल का तिरी रंग ज़रा देख रहे हैं
देखा नहीं हम ने अभी दुनिया का बदलना
बदली है ज़माने की हवा देख रहे हैं
अब ख़ार नहीं 'रियाज़' आंख में है आलम-ए-हस्ती
हम दूसरे आलम की फ़ज़ा देख रहे हैं।

-रियाज़ ख़ैराबादी

◆ ◆ ◆

मिरे सिमटे लहू का इस्तिआरा ले गया कोई
मुझे फैला गया हर-सू किनारा ले गया कोई
बस अब तो मांगता फिरता हूं अपने
आपको सब से
मिरी सांसों में जो कुछ था वो सारा ले गया कोई।

-रियाज़ लतीफ़

• इससे पहले कि...

इससे पहले कि धूप में
कपूर सी उड़ जाए यह दुनिया
दर्द और दर्प के अंत भेद को पहचानो
दुःख और संत्रास की जड़ें
शायद यहीं कहीं हैं
इससे पहले कि धूप में
कोई बादल बन जाए
वाष्पीकरण की प्रक्रिया जान लो
बाढ़ को किसी की पहचान
नहीं होती।

—सैयद शहरोज़ क़मर